इकाई 13 वैदिक देवताओं का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ऋग्वेद में उल्लिखित प्रमुख देवताओं के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- देवताओं के स्वरूप एवं कर्मों को ससन्दर्भ समझ सकेंगे।
- प्रकृति के देवत्व भाव की अनुभूति कर सकेंगे।
- प्रत्येक देवता के अपर देवता के रूप/कर्म प्रभृति के आधार पर वर्गीकरण कर सकेंगे।
- जन-सामान्य में देवता तत्त्व के सम्बन्ध में व्याप्त भ्रान्ति का निराकरण कर सकेंगे

13.1 प्रस्तावना

देवो दानात्, द्योतनात्, दीपनात् वा प्रकृत वचन के अनुसार देवता शब्द दानशीलता, द्युतिमत्ता एवं दीप्तिमत्ता का परिचायक है। वैदिक आर्यों ने प्रकृति को समझने के लिए भिन्न-भिन्न देवताओं की कल्पना की। वे यह विश्वास करते थे कि इनकी कृपा से ही समस्त कार्य संचालित होते हैं।

तिस्र एव देवता, निरुक्तकार ने देवता के मुख्यतः तीन प्रमुख विभाग पृथिवीस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय एवं द्युस्थानीय के भेद से स्वीकार किये हैं। अन्य देवताओं की संज्ञा

एवं वर्गीकरण का अन्तर्भाव इन तीन के अन्तर्गत ही कर लेना चाहिए यतो हि ये स्थूलस्वरूप विषय के स्पष्टीकरण में अधिक सहायक होते हैं। अधुना इस प्रसंग में हम प्रमुख देवताओं के विषय में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

13.2 वैदिक देवताओं का स्वरूप

वैदिक साहित्य में प्राप्त सन्दर्भों के आधार पर प्रमुख देवताओं का क्रमशः विवरण अधोलिखित है –

13.2.1 अग्नि

अग्नि पृथिवीस्थानीय देवताओं में प्रमुख हैं। ऋग्वेद के 200 सूक्तों में अग्नि की स्तुति है तथा कतिपय सूक्तों में अन्य देवताओं के साथ संयुक्त रूप से की गयी इनकी प्रार्थना भी है। इस प्रकार प्रभाव की दृष्टि से वैदिक देवताओं में इन्द्र के अनन्तर अग्नि का ही स्थान है। निरुक्त (7.14) में अग्नि के निर्वचन प्रसंग में कहा गया है – ये अग्रणी होते हैं, यज्ञों में सर्वप्रथम स्थापित किये जाते हैं (प्रणीयते)। जिस किसी पदार्थ को ये ग्रहण करते हैं, उसे अपना अङ्ग बना लेते हैं **(अङ्गं नयति संनममानः)**। स्थौलाष्ठीवि आचार्य का मत है कि जो स्निग्ध नहीं करता (नक्नोपयति–ऩञ्+क्नू धातु) वही अग्नि है। अतः अग्नि का कार्य किसी भी वस्तु को शुष्क कर देना है। आचार्य शाकपूणि **अग्नि** का निर्वचन तीन आख्यातों से करते हैं– इ धातु (गमनार्थक) से अ वर्ण, अञ् (प्रकाशित करना) अथवा दह् (जलाना, दग्ध) से ग वर्ण और नी (ले जाना) से नि की व्याख्या की जा सकती है।

निरुक्त में यास्क ने अग्नि से सम्बद्ध पदार्थों में (अग्निभक्तीनि) पृथिवीलोक, प्रातःसवन, वसन्त ऋतु, गायत्री छन्द, त्रिवृत् स्तोम, रथन्तर साम एवं पृथ्वीलोक में अवस्थित देवगण, ये निर्दिष्ट किये हैं। अग्नायी, पृथिवी और इष्ठा– ये तीन देवियाँ भी अग्नि सम्बद्ध हैं। अग्नि के तीन प्रमुख कर्म है– हव्य पदार्थ को देवताओं तक पहुँचाना, देवताओं को यज्ञ में बुलाकर लाना तथा दृष्टिविषयक प्रकाशादि कर्म। अग्नि के साथ प्रायः इन्द्र, सोम, वरुण, पर्जन्य तथा ऋतुओं की स्तुति देखी जाती है।

ऋग्वेद में अग्नि के त्रिविध जन्म का वर्णन प्राप्त होता है। प्रथम जन्म यज्ञ में दो अरणियों से होता है। ये अरणियाँ (यज्ञ में अग्नि को उत्पन्न करने वाले दो काष्ठ खण्ड) अग्नि के माता-पिता हैं, जिन्हें वे जन्म के साथ ही खा जाते हैं **(जायमानो गर्भो अत्ति, ऋग्वेद 10.79.4)**। दस अंगुलियाँ अरणि मन्थन करती हैं, वे अग्नि भी अग्नि की माताएँ कही गयी हैं। इस कार्य में शक्ति लगती है। अतः अग्नि ऊर्जोनपात् तथा **सहसस्पुत्रः** (शक्ति के पुत्र) भी कहे गये हैं। प्रतिदिन उत्पन्न होने वाले अग्निदेव युवा और **यज्ञियानां प्रथमः** (प्राचीनतम) भी हैं। यह अग्नि का पार्थिव रूप है।

अग्नि का द्वितीय जन्म **अन्तरिक्षस्थ जल** से होता है। यह वैद्युताग्नि है। अतएव कतिपय सूक्तों में अग्नि को **अपांनपात्** भी कहा गया है। वस्तुतः मेघों के गर्भ में विद्यमान विद्युत्-रूप अग्नि ही अपांनपात् है।

अग्नि का तृतीय **जन्म द्युलोक** में होता है। पृथ्वी पर इस उत्तम अग्नि को मातरिश्वा लाये– **स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वमे (ऋग्वेद 1.143.2)**। वेदों में अग्नि तथा मातरिश्वा के बीच कार्य-कारणभाव माना गया है। सूर्य को भी द्युस्थानीय अग्नि का ही रूप माना गया है।

यदा-कदा अग्नि को द्विजन्मा कहा गया है **(अयं स होता यो द्विजन्मा)**। क्योंकि पृथ्वी तथा द्युलोक में ब्रह्माण्ड का विभाग स्वीकार कर दोनों लोकों से अग्नि सम्बद्ध कहे गये हैं। यह धारणा भी है कि वे वर्षा में द्युलोक से उतरकर वनस्पतियों में प्रविष्ट हो जाते हैं, इनसे वे पुनः प्रकट होते हैं। अपने मानवीय रूप में अग्निदेव पुरोहित, यज्ञ के प्रमुख देवता, होता, ऋत्विक् तथा सर्वाधिक धनदाता है –

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।। (ऋग्वेद 1.1.1)

अग्नि प्रत्येक गृह में निवास करते हैं, अतः दमूनस् और गृहपति कहे गये हैं। वैदिक कर्मकाण्ड में गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिण नामक तीन प्रकार की अग्नियों का प्रयोग होता है। उनमें गार्हपत्याग्नि प्रमुख तथा मूल होता है। उसी से अन्य अग्नियों की उत्पत्ति होती है। अग्नि प्रत्येक घर के अतिथि हैं **(स दर्शत श्रीरतिथिर्गृहे गृहे)**। वे अपने उपासकों के भाई, पिता, पुत्र एवं माता भी हैं। अग्नि के अभाव में न कोई घर हो सकता है, न ही यज्ञ हो सकता है। देवताओं को लाना और यज्ञ में अर्पित हव्य को तत्तद् देवताओं तक पहुँचाना अग्नि का ही कार्य है। अतः अग्नि को दूत भी कहा गया है **(अग्निं दूतं वृणीमहे)**। वे देवताओं और पृथ्वी के बीच के मार्ग के ज्ञाता हैं। यज्ञों के मर्मज्ञ, ऋतुओं के ज्ञाता तथा विशिष्ट प्रज्ञा से समृद्ध **(कविक्रतुः)** अग्नि देवताओं के यज्ञ-विधानों से अपरिचित मनुष्यों की त्रुटियों को क्षमा कर देते हैं। अग्नि को जातवेदस् (सभी कुछ जानने वाला) कहा गया है। एवमेव उन्हें वैश्वानर (सभी मनुष्यों से सम्बद्ध) भी कहा गया है। यह अन्धकार के विनाशक, यज्ञ के प्रमुख सहायक एवं समस्त अनिष्ट तत्त्वों के विध्वंसक हैं। वनों पर आक्रमण करते हुए वे नापित के समान पृथ्वी को स्वच्छ करते हैं तत्समय उनका पथ अन्धकारपूर्ण होता है, धूम ऊपर उठता है **(धूमकेतुः)**। अपने स्तोता को वे गार्हस्थ्य के आनन्द, सन्तान तथा अभ्युदय से परिपूर्ण कर देते हैं। दो अरुण अश्व उनके उज्ज्वल रथ को खींचते हैं। काष्ठ और घृत इनके खाद्य पदार्थ हैं। घृत और सोम इनके पेय हैं। दिन में तीन बार भोजन करते हैं। ये देवताओं के मुख हैं। यज्ञ से ही विशेष सम्बन्ध के कारण इन्हें **घृतपृष्ठ, शोचिष्केश, रक्तश्मश्रु, तीक्ष्णदंष्ट्र एवं रुक्मदन्त** कहा गया है। ज्वाला अग्नि की जिह्वा है। पुरोहित अग्नि को सदा प्रज्ज्वलित रखते थे। अन्य देशों के पुरोहित भी भारत के समान अग्नि में दूसरे देवताओं के लिए हव्य देते थे।

13.2.2 इन्द्र

ऋक्संहिता के प्रायः 250 सूक्तों में इन्द्र की स्तुति है। अतएव ये प्रधान वैदिक देवता हैं। उनके विषय में आख्यान भी अन्य की तुलना में अधिक दृष्टिगोचर होते हैं। वैदिक आर्यों के नेता और महावीर के रूप में इन्द्र का स्वरूप मानवीय है। अनावृष्टि और अन्धकार के राक्षसों पर विजय प्राप्तकर जल का प्रवहण एवं प्रकाश का प्रसरण इन्द्र-सम्बद्ध गाथाओं में प्रमुख कार्य के रूप में परिगणित किये गये हैं। साथ ही प्रकारान्तर से ये युद्ध के देवता हैं तथा शत्रु विजय में नेतृत्व करते हैं।

निरुक्त (7.10) के अनुसार इन्द्र अन्तरिक्षस्थानीय देवताओं में श्रेष्ठ हैं। प्रमुखतया अन्तरिक्षलोक, ग्रीष्मऋतु, माध्यन्दिन सवन, त्रिष्टुप् छन्द, पंचदश स्तोम तथा बृहत् साम आदि का सम्बन्ध इनसे है। अग्नि, सोम, वरुण, पूषा, बृहस्पति, विष्णु, वायु प्रभृति देवताओं के साथ इन्द्र की स्तुति संयुक्त रूप से की जाती है। इन्द्र के 03 प्रमुख कर्म हैं– रसानुप्रदान (वृष्टि), वृत्रवध तथा शक्ति सम्बद्ध कार्य प्रकट करना **या च का च बलकृतिरिन्द्रकर्मैव तत्।** बृहद्देवता (2.6) से इन्द्र के चार कर्म स्पष्ट हैं –

रसादानं तु कर्मास्य, वृत्रस्य च निवर्हणम्।
स्तुतेः प्रभुत्वं सर्वस्य बलस्य निखिला कृतिः।।

इन्द्र का निर्वचन यास्क ने निरुक्त (10.8) में अनेक प्रकार से किया है, परिणामतः उनके अधिकाधिक पक्षों का प्रकाशन हो— **इन्द्रः इरां दृणातीति वा** (इरा/अन्न का विदारण करने वाला), **इरां ददातीति वा** (इरा का दान करने वाला), **इरां दधातीति वा** (इरा को धारण करने वाला), **इरां दारयति इति वा** (जो अन्न के विदारण को संचालित करे), **इरां धारयति इति वा** (जो अन्न को स्थापित करे), **इन्दवे द्रवतीति वा** (सोमरस पानार्थ दौड़ने वाला), **इन्दौ रमत इति वा** (इन्दु/सोमरस में आनन्द लेने वाला), **इन्धे भूतानीति** (समस्त प्राणियों में चैतन्यरूप में प्रविष्ट होकर प्रदीप्त करने वाला), **इदं करणादित्याग्रायणः** (आग्रायण मुनि के अनुसार इस जगत् को निर्मित करने वाला परमात्मा ही इन्द्र है), **इदं दर्शनादित्यौपमन्यवः** (औपमन्यव मुनि के अनुसार इस जगत् को देखने वाला परमात्मा ही इन्द्र है), **इन्दतेर्वा ऐश्वर्यकर्मणः** (ऐश्वर्य अर्थवाले इन्द् धातु से निष्पन्न होने से ऐश्वर्यवान् परमात्मा इन्द्र है), **इन्दन् शत्रूणां दारयति वा** (ऐश्वर्य प्रकट करते हुए शत्रुओं का विदारण करने वाला), **इन्दन् शत्रूणांद्रावयिता वा** (ऐश्वर्य दिखाकर शत्रुओं को खदेड़ने वाला), **आदरयिता वा यज्वनाम्** (यज्ञकर्त्ताओं को सम्मान देने वाला)। एवंविध एक ओर इन्द्र को परमात्मा/वृष्टिकर्ता के रूप में परिगणित किया जाता है।

जन्म से ही इन्द्र देवताओं के नेता हैं **(यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् ऋतुना पर्यभूषत्)।** इन्द्र बलवान्, पराक्रमी, शुभ्र, सर्वविद्, अमित बुद्धिशाली तथा वज्र के प्रयोक्ता हैं। त्वष्टा द्वारा इन्द्र के वज्र का निर्माण किया गया, जिसमें एक सहस्र नोंकें हैं **(सहस्रभृष्टि)**। इन्द्र का रूप अत्यन्त सुन्दर एवं सूर्य की आभा से युक्त है। उनके केश, दाढ़ी, सम्पूर्ण शरीर हरिवर्ण (पीला) है। इन्द्र को स्वर्णमय कहा गया है **(इन्द्रो वज्री हिरण्ययः, ऋग्वेद 1.7.2)**। इन्द्र के विशेषणों में वज्र धारण तथा सोमपान का सर्वाधिक वर्णन प्राप्त होता है **(यः सोमपाः)**। इन्द्र का उदर सरोवर के समान है **(ह्रदा इव कुक्षयः मिधानाः)**। सोमपानानन्तर उनमें अनुपम शक्ति प्रसरित हो जाती है **(अस्य मदे अहिमन्द्रो जघान)**। अधिक सोमपान से उन्हें कष्ट होता है, ऐसी स्थिति में सौत्रामणि यज्ञ के द्वारा देवगण उन्हें रोगमुक्त कराते हैं।

इन्द्र के जन्म के विषय में अनेक आख्यान प्रसिद्ध हैं, यथा— देवताओं ने वृत्रों के नाशार्थ इन्द्र को उत्पन्न किया था **(धनं वृत्राणां जनयन्त देवाः)**। पुरुष सूक्त के अनुसार पुरुष के मुख से इन्द्र और अग्नि का जन्म हुआ था **(मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च)**। ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रजापति से इन्द्र का जन्म बताया गया है। इन्द्राणी उनकी पत्नी है। अग्नि उनके जुड़वाँ भाई हैं। मरुद्गण उनके स्थायी सहयोगी, सभी युद्धों में साथ रहते हैं। इन्द्र के कार्यों में वृत्र-वध का सर्वाधिक उल्लेख प्राप्त होता है। वृत्र वस्तुतः एक काल्पनिक दैत्य है, जो मेघों में रहकर वृष्टि को रोककर रखता है। उसे अहि, शुष्ण, शम्बर, नमुचि, उरण, अप्सुजित् इत्यादि नामों से भी स्थापित किया गया है। इन्द्र उसे वज्र से मारकर जल का मोचन करते हैं। मेघों से आच्छन्न सूर्य भी मुक्त हो जाता है साथ ही अन्धकार दूर होकर प्रकाश छा जाता है। मेघों के गर्जन तथा विद्युत् स्फुरण के दृश्य को ऋग्वेद में इन्द्र वृत्र संग्राम के रूप में वर्णित किया गया है। युद्ध में इन्द्र के वज्र से वृत्र का वध हो जाता है, फलतः वृष्टि होने लगती है। यह दृश्य अनेक स्थानों पर युगपत् घटता है। अतएव यह कहा जाता है कि इन्द्र ने सैकड़ों सेनाओं को जीत लिया **(शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः, ऋग्वेद 10.103.1)**। वृत्र पर्वत पर निवास करता है। वेद में मेघों को पर्वत कहा गया है। इन्द्र उन पर्वतों का भेदनकर जल को

मुक्त कर देते हैं। जलमोचन की तुलना गोशाला/व्रज से गायों के खोले जाने से की गयी है। इन्द्र ने पणियों के बन्धन से आर्यों की गायों का उद्धार किया था। पणियों ने आर्यों की गायें चुराकर पर्वतों के बीच रख दी थीं। इन्द्र ने सरमा को दूती के रूप में भेजकर गायें लौटाने के लिए कहा किन्तु बात नहीं बनी। तब उन्होंने आक्रमण करके पणियों का नाश किया एवं गायें छुड़ा लीं।

13.2.3 सवितृ

वैदिक साहित्य के अनुसार सविता (सवितृ) द्युस्थानीय देवता है। ऋग्वेद में सविता की स्तुतिपरक 11 सम्पूर्ण सूक्त प्राप्त होते हैं। यद्यपि विविध सूक्तों में कतिपय मन्त्र प्राप्त होते हैं तथा इनका नाम प्रायः 170 बार निर्दिष्ट हुआ है। सविता के लक्षण सूर्य से इतने अधिक साम्य रखते हैं कि कुत्रचित् दोनों को एक ही देवता के रूप में समझा गया है। पौराणिक काल में तो सविता और सूर्य अभिन्न ही माने गये हैं। तथापि वैदिक काल में सूर्य मूर्त देवता के रूप में तथा सविता अमूर्त भावात्मक कार्यप्रेरक देवता के रूप में देखे गये हैं। निरुक्त (10.31) में इनका निर्वचन प्रसंग में है–**सविता सर्वस्य प्रसविता,** अर्थात् समस्त संसार और कर्मों को प्रेरणा द्वारा उत्पन्न करना सविता का मुख्य कार्य है। सविता से सम्बद्ध ऋचाओं में **सू** धातु से निष्पन्न शब्दों का सर्वत्र प्रयोग मिलता है, यथा – **प्रसावीद्** (उद्बोधित किया), **प्रसविता** (जाग्रत करने वाला), **प्रसवः, सवः** (उद्बोधन), **सुवतात्** (प्रस्तुत करे), **सोषवीति** (बार-बार प्रेरित करता है), **परा सुव** (दूर भगाओ), **आ सुव** (इधर प्रेरित करो) इत्यादि। इत्थं सविता का सम्बन्ध प्रेरणा एवं उद्बोधन के साथ अत्यन्त अधिक है। सूर्य के साथ सू धातु का एक-दो बार ही प्रयोग प्राप्त होता है।

विद्वानों का कथन है कि सविता मूलतः भारतीय देवता हैं। सूर्य के विशेषण के रूप में इनकी कल्पना हुई थी, जो जीवन और गति को प्रेरित करके संसार में व्यवस्था निर्मित करते हैं।

सविता के सन्दर्भों में हिरण्य के साथ उनका विशेष सम्बन्ध स्पष्टतया प्रकाशित होता है। उनकी आँखें **(हिरण्याक्षः)**, हाथ **(हिरण्यपाणिः, हिरण्यहस्तः)** तथा जीभ **(हिरण्यजिह्वः)** तक स्वर्णमय है। उनके केश पीत हैं **(हरिकेशः)**। सविता का रथ पूर्णतः स्वर्णमय है– **हिरण्ययेन सविता रथेन**। उस रथ के छोटे-मोटे अवयव भी स्वर्ण निर्मित हैं। उनके रथ को चमकीले, भूरे रंग वाले तथा श्वेत चरण युक्त अश्व खींचते हैं। **विजनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्,** सविता का रथ अलंकारों से पूर्ण है तथा अपने स्वामी के समान ही वह विश्वरूप भी है **(अभीवृतं शनैर्विश्वरूपम्)**। अपनी भुजाओं को उठाकर सविता सभी प्राणियों को आशीर्वाद/प्रेरणा देते हैं। वे एक ही साथ सभी लोकों को तथा अन्धकारपूर्ण स्थानों को उद्भासित कर देते हैं। सविता का मार्ग अन्तरिक्ष में शाश्वतरूप से निर्मित है, उसमें धूलि नहीं है और वह अत्यन्त सुगम है। उपासकों की रक्षार्थ उन मार्गों से सविता के आगमन की प्रार्थना की गयी है–

> **ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।**
> **तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव।।**
> **(ऋग्वेद 1.35.11)**

दुर्भाग्य, अपकार, कष्ट एवं अन्धकार को दूर भगाना सविता का महत्त्वपूर्ण कार्य है। साथ ही वे कल्याण एवं शान्ति का आदान करते हैं। एक ऋचा में इस प्रकार प्रार्थना की गयी है–

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।

यद् भद्रं तन्न आ सुव।। (ऋग्वेद 5.82.5)

प्रेरक एवं विश्रान्ति प्रदायक होने के कारण सविता दिवस के अतिरिक्त रात्रि के भी देवता हैं। प्रातःकाल में प्राणियों को वे कार्यार्थ प्रेरित करते हैं तो रात्रि को लाकर विश्राम भी प्रदान करते हैं। उनके लक्षणों में कतिपय नैतिक विशिष्टताएँ भी हैं, यथा–वे पापों का संशोधन करके प्राणियों की रक्षा परलोक में भी करते हैं। मृत्यु के अनन्तर वे अपने उपासकों को परम सुख के स्थान तक पहुंचाते हैं। देवताओं का अमृतत्व भी सविता की ही कृपा है।

पुराण काल में सविता विश्व की मानसिक, शारीरिक, नैतिक एवं उत्तेजकशक्ति के प्रतीक बन गये, जिससे अधोलिखित मन्त्र को धार्मिक क्रिया-कलाप में समस्त मन्त्रों की अपेक्षा उत्कृष्ट स्थान प्राप्त हुआ। प्रकृत मन्त्र को गायत्री छन्द के कारण गायत्री मन्त्र भी कहते हैं। यद्यपि इसके अन्तर्गत सविता देवता से बुद्धि प्राप्त्यर्थ प्रार्थना है–

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात्।।(ऋग्वेद 3.62.10)

भाव यह है कि उस सविता देवता के वरणीय श्रेष्ठ प्रकाश का हम ध्यान करें जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करेगा। इसके आरम्भ में ओंकार अर्थात् प्रणव तथा तीन लोकों के प्रतिनिधिभूत महाव्याहृतियाँ भी प्रयुक्त की जाती हैं।

13.2.4 वाक्

ऋग्वेद के वाक् सूक्त (10.125) में वाक् की परिगणना देवी के रूप में प्राप्त होती है। सूक्त में वाक् स्वयमेव स्वयं का वर्णन करती हैं, यथा –

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।।10.125.1।।
बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेम्णा तदेषां निहितं गुहा विः।।10.71.1।।

वाक् सभी देवताओं के साथ रहती हैं एवं मित्र-वरुण, इन्द्राग्नि तथा अश्विनों को धारण करती हैं। ऐसे मनुष्य जो आस्था से वियुक्त हैं उनके प्रति वे रुद्र का धनुष उठाती हैं। वाक् का स्थान जल एवं सागर में है। यह समस्त प्राणियों को व्याप्त किये हुए है। मन्त्रों के सन्दर्भ से वाक् को रानी तथा दिव्या सम्बोधन का ज्ञान होता है। यथा –

यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम।।8.100.10।।
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु।।8.100.11।।

निघण्टुकोश में वाक् की गणना अन्तरिक्षस्थानीय देवताओं में प्राप्त होती है। साथ ही निरुक्तकार के अनुसार **(तस्मान्माध्यमिकां वाचं मन्यन्ते। निरुक्त 11.27)** माध्यमिका वाक्, वाग्देवी के मानवीकरण का आरम्भ का स्थान/बीज कही जा सकती है। वाक् के सन्दर्भ में ब्राह्मणग्रन्थों में एक प्रसिद्ध गाथा है जिसके अनुसार सोम को गन्धर्वों के यहाँ से स्त्रीरूपधारिणी वाक् के विनिमय से लाया गया था। यथा –**सोमो**

वै राजा गन्धर्वेष्वासीत्तं देवाश्च ऋषयश्चाभ्यध्यायन् सोमो राजागच्छेत् इति सा वागब्रवीत्। स्त्रीकामा वै गन्धर्वा मयैव स्त्रिया भूतया पणध्वमिति (ऐतरेय ब्राह्मण 1.27)।

13.2.5 पुरुष

वैदिक साहित्य में प्राप्त पुरुष सूक्त **(ऋग्वेद 10.90)** का देवता पुरुष को बताया गया है। यह सृष्टि की मूल रचना का कर्त्ता है। इसके सभी अंग सृष्टि के अंग हो गये। पूर्ण पुरुष (नारायण) अनन्त शिर, अनन्त नेत्र तथा असंख्य पैर वाला है। वह पृथिवी प्रभृति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चारों ओर से व्याप्त कर दश अंगुल अधिक परिमाण में विद्यमान है, यथा –

> **सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।**
> **स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।1।। (ऋग्वेद 10.90)**

वर्तमान, भूत तथा भविष्य वह परम पुरुष ही है। उसकी इतनी महिमा है और उससे भी बड़ा वह परमपुरुष है, उसके एक चतुर्थांश में सम्पूर्ण लोक हैं, तथा इसका तीन चतुर्थांश, अमरलोक है, जो द्युलोक नाम से जाना जाता है। उसके चतुर्थांश से ही इस सृष्टि का प्रपंच चलता है।

उस पुरुष के चतुर्थांश से विराट् उत्पन्न हुआ, विराट् से (जीवात्मा रूप में) पुरुष (उत्पन्न हुआ) उत्पन्न होते ही उसने (देव मनुष्य आदि से) अपने को अलग कर लिया। इसके पश्चात् पृथिवी तथा जीवशरीर की सृष्टि की। यथा –

> **तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।**
> **स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।5।।(ऋग्वेद 10.90)**

देवताओं ने जब पुरुषरूप मानस हविर्द्रव्य से यज्ञ किया, (उस समय) वसन्त ऋतु इस यज्ञ में घृतरूप थी, ग्रीष्म समिधा थी तथा शरद् ऋतु हविरूप थी। यही प्रकृति-यज्ञ समग्र सृष्टि की सर्जना करने वाला है।

उस सबसे पूर्व उत्पन्न यजनीय पुरुष को देवताओं ने पवित्र कुश पर रखकर प्रोक्षण किया। उससे देवताओं ने, प्रजापति आदि सृष्टि कर्त्ताओं ने तथा जो ऋषि थे, उन्होंने यजन किया। ये ऋषि आदि पार्थिव प्राणी नहीं हैं, अपितु सृष्टि के मूलभूत तत्त्व हैं। उस यज्ञ से जिसमें सर्वरूपात्मक पुरुष का यजन हुआ था, दधिमिश्रित घृत एकत्र किया गया। उस घृत से आकाश, वन तथा ग्रामों में रहने वाले जीवों की सृष्टि हुई। उस सर्वहुत् यज्ञ से ऋक्, साम, यजुष् उत्पन्न हुए तथा गायत्री आदि छन्द भी उत्पन्न हुए।

उस सर्वहुत् यज्ञ से अश्व उत्पन्न हुए तथा वे सभी जो दोनों तरफ दांत वाले हैं। उससे गायें उत्पन्न हुईं तथा उससे बकरियाँ तथा भेड़ें भी उत्पन्न हुईं। अजा उदान वायु है, जो सदा ऊपर की ओर चलता है, तथा भेड़ अपान वायु है जो सर्वदा निम्नगामी होता है।

जब देवताओं ने पुरुष को विभक्त किया, उस समय उसके कितने विभाग किये? उसका मुख क्या था? उसकी दोनों भुजायें क्या थीं? उसकी दोनो जंघायें क्या थीं? उसके दोनों पैर क्या कहे जाते हैं? ब्राह्मण उसका मुख था, दोनों भुजाओं से क्षत्रिय हुआ, उसकी जंघाओं से वैश्य हुआ तथा उसके दोनों पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ। उस

पुरुष के मन से चन्द्रमा, आँखों से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि तथा उसके श्वास से वायु की उत्पत्ति हुई। उसकी नाभि से अन्तरिक्ष, शिर से आकाश, दोनों पैरों से पृथिवी, कान से दिशायें उत्पन्न हुईं, यथा –

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।12।।
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रचाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत।।13।।(ऋग्वेद 10.90)

उसकी सात परिधियाँ थीं, इक्कीस समिधायें बनायी गई थीं, जिस समय यज्ञ करते हुए देवताओं ने पुरुष पशु को बाँधा था। उस यज्ञ की सात परिधियाँ कही गई हैं। परिधि यज्ञ-वेदी की सीमा का नाम है। सात लोक ही सप्त परिधियाँ है। इसी के अनुकरण पर ऐष्टिक वेदि के आहवनीय की तीन परिधियाँ, उत्तरवेदि की तीन परिधियाँ तथा आदित्य सप्तम परिधि रूप में है। संवत्सर के 12 मास, 5 ऋतुयें, ये 3 लोक तथा आदित्य ये ही यज्ञ की 21 समिधायें हैं। इन प्रतीकों का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में है। यज्ञ से देवताओं ने यज्ञ पुरुष का यजन किया, वे ही सर्वप्रथम धर्म थे। उन यजन करने वालों ने स्वर्ग को प्राप्त किया, जहाँ पर सृष्टि करने में समर्थ प्रजापति आदि देवगण वास करते हैं। सारतया पुरुष रूप आत्मा के बोध द्वारा जीवन को पूर्णता की ओर बढ़ाना चाहिए।

विशेष – वस्तुतः अन्य देवताओं के समान पुरुष का वर्णन स्पष्टतया प्राप्त नहीं होता है। तदभाव में पुरुषसूक्त के भावों का संग्रन्थन यहाँ उपस्थित किया गया है।

13.2.6 मरुत्

ऋग्वेद के अनुसार मरुतों को अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं में परिगणित किया गया है। मरुतों के समूह में कुल संख्या साठ अथवा सात के त्रिगुणित स्वीकार की जाती हैं। अतएव इनकी प्रार्थना बहुवचन में प्राप्त होती है। ऋग्वेद में स्वतन्त्रतया 33 सूक्तों में, इन्द्र के साथ 7 सूक्तों में एवं पूषा और अग्नि के साथ 1-1 सूक्त में स्तुति प्राप्त होती है। मरुत् को तूफान एवं वृष्टि का देवता स्वीकार किया गया है।

निरुक्त (11.13) में मरुत् के निर्वचन प्रसंग में कहा गया है– **मरुतो मितराविणो मितरोचितो वा, महद् द्रवन्तीति वा** अर्थात् मरुत कसकर गर्जना करते हैं/चमकते हैं। तृतीय निर्वचन के अनुसार यह अत्यधिक तीव्र गति से दौड़ते हैं।

रुद्र मरुतों के पिता हैं। अतएव इन्हें रुद्रासः/रुद्रियासः/रुद्रसूनवः कहा जाता है। रुद्र के विशिष्ट लक्षण मरुतों में भी प्राप्त होते हैं। मरुतों की माता पृश्नि है, जो गौ के रूप में कल्पित है। अतः इन्हें गोमातरः एवं पृश्निमातरः भी कहा गया है। कतिपय स्थलों पर द्यौ, अग्नि तथा वायु की सन्तति भी इन्हें बताया गया है। साथ ही कहीं पर स्वयं उत्पन्न भी कहा गया है। इनके गण में कोई बड़ा/छोटा नहीं है–**अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय (ऋग्वेद 5.60.5)।**

यह सभी स्वमार्ग पर साथ-साथ बढ़ते हैं। रोदसी इनकी पत्नी है, जो सदा इनके रथ पर रहती है। इनका सम्बन्ध द्युति एवं कान्ति से है। ये सभी अग्नि की ज्वाला के समान चमकते हैं। इन्हें स्वभानवः/रोचमानाः/चन्द्रवर्णाः प्रभृति विविध विशेष नामों से पुकारा जाता है। इनका विद्युत् के साथ सम्बन्ध कतिपय स्थलों में दृष्टिगोचर होता है। जब यह घृत की वर्षा करते हैं तब विद्युत् पृथ्वी की ओर देखकर स्मितहास करती है।

इनके आयुध भी इन्हीं के समान द्युतिमान् है। इनके कृपाण/भाले **(ऋष्टि)** विद्युतवत् चमकते हैं। ये धनुष भी धारण करते हैं। इनके रथ चमकीले हैं, जिसको मन की गति से चलनशील हरिणियां खींचती हैं। इनके रथ के घोड़े चितकबरे हैं, अतः इन्हें **पृषदश्वाः** कहा जाता है। इनकी वेशभूषा में सुन्दर अलंकार, सुनहरे वस्त्र, माला और शिरस्त्राणादि प्रमुख हैं। ये स्त्रियों के समान अलंकृत होते हैं। ये संघर्षशील देवता हैं। युद्धकाल ये इन्द्र की शक्ति का वर्धन कर देते हैं तथा समस्त शत्रुओं को रोक देते हैं। वृष्टि के समय पर अपने रथों में हरिणियों को युक्त कर वे मेघ को इस प्रकार प्रेरित करते हैं, जिससे चारों तरफ से धारायें ऊपर से फूट पड़ती हैं। पृथ्वी जल से सिक्त हो जाती है। मरुतों के भयावह कार्य से सभी भुवन डरते हैं, क्योंकि वे राजाओं के समान प्रदीप्त आकृति वाले हैं – **भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसन्दृशो नरः (ऋग्वेद 1.85.8)।** ये अत्यधिक पराक्रमशील हैं तथा स्वपराक्रम से वनों/पर्वतों/पृथिवी को भी आन्दोलित कर देते हैं **(प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा)**। पर्वतों अर्थात् मेघों को समुद्र के पार पहुँचा देते हैं– **य ईङ्खन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् (ऋग्वेद 1.19.7)।**

मेघों की सहायता से ये सूर्य का आच्छादन कर देते हैं। वृक्षों को जंगली हाथियों की तरह चबा डालते हैं– **मृगा इव हस्तिनः खादथा वना (ऋग्वेद 1.64.7)।** इनकी गति मन के समान है तथा गर्जना भयावह है। इन्द्र के युद्ध में ये सहायक होते हैं। वृत्रासुर के साथ घटित युद्ध में इन्होंने गीत का गान तथा सोम का सवन भी किया था। ये अपने गान के द्वारा इन्द्र की शक्ति को बढ़ा देते हैं। कभी-कभी यह स्वपितृतुल्य अत्यन्त क्रूर भी हो जाते हैं। अतएव इनसे प्रार्थना की जाती है कि ये अपने आयुधों को उपासकों से दूर रखें। समुद्र, पर्वत एवं नदियों के तटों से ये ओषधियाँ ले आते हैं अतएव रुद्रवत् ओषधि सम्बद्ध हैं **(आ भेषजस्य वहता सुदानवः)।** यह भयावह होने पर भी कान्ति एवं सौन्दर्य के देवता भी हैं।

13.2.7 नासदीय

सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व न नामरूपादि रहित अवस्था थी, न नामरूपात्मक अवस्था ही थी, न कोई लोक था, न आकाश ही था जो ऊपर है। किसने आवृत किया था? कहां किसकी सुरक्षा में? क्या अपार गम्भीर जल था? तब मृत्यु नहीं थी अमृतत्व का अस्तित्व नहीं था। रात्रि तथा दिन का भेदात्म ज्ञान भी नहीं था। उससे बढ़कर अलग पहले कुछ भी नहीं था।

महान् अन्धकार से ढंका हुआ सर्वप्रथम अन्धकार था। इस सम्पूर्ण जल से भिन्न कोई चिह्न नहीं था वह स्थित था, सर्वव्यापी भावरूप अज्ञान था अपनी तपस्या की महिमा से वह एक उत्पन्न हुआ।

काम, जो मन का प्रथम विकार था उसमें सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। बुद्धिमानों ने हृदय में प्रज्ञा से विचार कर नामरूपात्मक जगत् का कारण नामरूपरहित तत्त्व में ही पाया। उनका कार्य जाल (जो) किरणों की तरह शीघ्र फैला हुआ था, क्या वह मध्य में था अथवा क्या वह नीचे था? अथवा क्या वह ऊपर था? सृष्टि का बीज धारण करने वाले थे, आकाशादि महाभूत नीचे भोग्य था ऊपर भोक्ता।

कौन सही रूप से जानता है? कौन यह कहेगा कि यह कहाँ से उत्पन्न हुई है? यह विविध प्रकार की सृष्टि कहाँ से? देवता इस सृष्टि की तुलना में नवीन हैं। तब यह कौन जानता है? जहाँ से इसका प्रादुर्भाव हुआ।

यह विविधरूपा सृष्टि जहाँ से आई है (उसको उसने) या तो धारण किया था अथवा अगर नहीं (तो किसने धारण किया था) जो इसका ईश्वर है, वह सर्वोच्च स्वर्ग में है वही निश्चित रूप से इसे जानता है, यदि वह नहीं जानता, तो कौन जानता है (ऋग्वेद 10.129) सृष्टि की रचना परमेष्ठी ही करता है, यह प्रसिद्ध है।

विशेष – नासदीय नाम से ऋग्वेद में सूक्त प्राप्त होता है देवता नहीं। वस्तुतः नासदीय सूक्त के देवता भाववृत अथवा प्रजापति (क) ही हैं। अतएव सूक्तानुसार यह दैवभावसम्बद्ध विवरण प्रस्तुत किया गया है।

13.2.8 हिरण्यगर्भ

ऋग्वेद (4.53.2) में प्रजापति पद का उल्लेख सविता के विशेषण के रूप में हुआ है, जहाँ सविता को स्वर्ग का धारक और विश्व का प्रजापति कहा गया है। दशम मण्डल में चार स्थानों पर इस शब्द का एक स्वतंत्र देवता के अभिधान की भाँति प्रयोग है। प्रजापति को प्रशस्त प्रजा देने के लिए प्रयोग किया गया है एवं विष्णु, त्वष्टा और धाता के साथ उन्हें अपत्यदान के लिए (ऋग्वेद 10.85.43, 10.184.1, 9.5.9)। प्रजापति गायों को उर्वरा बनाते हैं (ऋग्वेद 10.169.4), सन्तानों और प्राणियों के रक्षक होने के कारण प्रजापति का आह्वान अथर्ववेद में भी किया गया है। ऋग्वैदिक सूक्त (10.121. 1) में उनका स्तवन पृथिवी, स्वर्ग, जल और निःशेष प्राणियों के सर्जक के रूप में किया गया है। वे अशेष सन्तानों के एकमात्र अधिपति, प्राणियों और गतिमानों के एकमात्र राजा और सब देवों के ऊपर एक देव के रूप में वर्णित हैं। उनके विधानों का पालन सभी प्राणी और देवता करते हैं। उन्होंने स्वर्ग और पृथ्वी को स्तम्भित किया। वह अन्तरिक्ष में लोगों के परिभ्रमण हैं। अपनी भुजाओं से वे संसार और प्राणियों को व्याप्त करते हैं। सर्वोच्च देव के रूप में ऋग्वेद में उनका केवल एकबार उल्लेख है किन्तु अथर्ववेद एवं वाजसनेयी संहिता में तथा ब्राह्मणों में सर्वत्र उन्हें प्रमुख देवता के रूप में निर्देश है। वह देवाधिदेव हैं (शतपथ ब्राह्मण 11.1.6.14)। वे आदिकाल में अकेले विद्यमान थे (शतपथ ब्राह्मण 2.2.4.1)। वे प्रथम याज्ञिक हैं शतपथ ब्राह्मण (6.2.3.1) में प्रजापति का तादूरूप्य ब्रह्मा के साथ किया गया है (आपस्तम्ब गृह्यसूत्र 3.4)। परवर्ती वैदिक धर्म के इस प्रमुख देवता के स्थान पर उपनिषदों एवं दर्शनों ने निर्गुण ब्रह्म की स्थापना की है।

मैत्रायणी संहिता (4.2.12) में कथानक आता है कि एकबार प्रजापति अपनी पुत्री उषा पर आसक्त हो गये। तब उषा ने स्वयं को मृगी के रूप में परिवर्तित कर लिया। इस पर प्रजापति ने अपने को मृग बना लिया। तब रुद्र ने क्रुद्ध होकर उनके ऊपर शर सन्धान किया, तब प्रजापति को होश आया और उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि यदि रुद्र उनके ऊपर बाण नहीं छोड़ेंगे तो वे उन्हें पशुपति बना देंगे (ऋग्वेद 10.61.7)। इस गाथा का उल्लेख ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनेकत्र हुआ है (ऐतरेय ब्राह्मण 3.33, शतपथ ब्राह्मण 1.7.4.1, पंचविंश ब्राह्मण 8.2.10)। इसका आधार ऋग्वेद के दो मन्त्र प्रतीत होते हैं (ऋग्वेद 1.71.5,10.61.5), जिनमें पिता सम्भवतः द्यौः अपनी पुत्री (पृथ्वी) पर आसक्त होते दिखाये गये हैं और जिनमें एकबार शर संधायक की ओर भी संकेत है।

ऋग्वेद (10.121) के प्रथम 9 मन्त्रों के क्रम में प्रजापति शब्द की आवृत्ति सर्वनाम **(क)** कस्मै के रूप में है। दशम मन्त्र में उत्तर दिया गया है कि एकाकी प्रजापति संस्थाओं में व्याप्त है। इस प्रयोग के आधार पर **क** शब्द का बाद में प्रजापति के विशेषण के

रूप में सर्वोच्च देव के स्वतन्त्र नाम के रूप में प्रयोग प्रारम्भ हुआ (ऐतरेय ब्राह्मण 3.22. 7, मैत्रायणी संहिता 3.12.5)।

ऋग्वेद (10.121) के प्रथम मन्त्र में सर्वोच्च देव को हिरण्यगर्भ कहा गया है, जो अशेष सत्ता के एकाकी अधिपति हैं। यह नाम ऋग्वेद में केवल इसी स्थान पर आता है किन्तु अथर्ववेद और ब्राह्मण साहित्य में अनेकत्र हुआ है। अथर्ववेद (4.2.8) में हिरण्यगर्भ का बोध इस प्रकार भी कराया गया है– जलों ने एक गर्भ उत्पन्न किया, जो उत्पन्न होते ही स्वर्णाभवरण से आच्छादित हो गया। तैत्तिरीय संहिता में हिरण्यगर्भ का प्रतिमान प्रजापति के साथ किया गया है। परवर्ती साहित्य में यह शब्द ब्रह्मा का अभिधान हो गया।

विशेष – हिरण्यगर्भ नाम से देवता का तात्पर्य प्रजापति से ही समझना चाहिए।

13.2.9 विष्णु

ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा पौराणिक सन्दर्भों में विख्यात एवं महत्त्वशाली विष्णु का स्थान ऋग्वेद में उस प्रकार का नहीं है। संख्या की दृष्टि से केवल पाँच सूक्तों में ही विष्णु की एकाकी स्तुति है। कतिपय सूक्तों में आंशिक रूप से विष्णु का वर्णन है। विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति विष्लृ धातु (व्याप्ति अर्थ) से है। एतदनुसार यह तीनों लोकों को व्याप्त करने वाले देवता हैं। विष्णु के वैशिष्ट्य में तीन पग द्वारा सम्पूर्ण विश्व का क्रमण, बृहत् शरीर धारण एवं युवा पुरुष का रूप लेना है। तीन पगों द्वारा विष्णु तीन लोकों की परिक्रमा करते हैं। इनकी गति तथा पदक्रम अत्यधिक विशाल हैं इसलिए उन्हें उरुगाय/उरुक्रम कहा गया है। विष्णु के दो पदक्रम मनुष्यों को दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु तृतीय पद मानव-दृष्टि से ऊपर है। उसका मेधावी जन ही प्रत्यक्ष कर पाते हैं। वह स्थान द्युलोक में अवस्थित नेत्र के समान प्रकाशित है– **तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।। (ऋग्वेद 1.22.20)**

वह स्थान विष्णु का प्रिय आवास है, जहाँ उनके उपासक रमण करते हैं। मधु का उद्गम वहीं है – **विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः**। उसी स्थान पर देवगण भी आनन्द प्राप्त करते हैं। विष्णु के परमप्रिय आवास स्थल में सदा विचरण करने वाली **(अयासः)** तथा बड़े शृंग वाली गायें **(गावो भूरिशृङ्गः)** रहती हैं। सम्भवतः यहाँ मेघों का संकेत है किन्तु इसी आधार पर विष्णु के गोलोक धाम का वर्णन पौराणिक ग्रन्थों में बारम्बार हुआ है। विष्णु के तीन पद में ही समस्त लोक निवास करते हैं–

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा। (ऋ1.154.2)

उनके उत्तम पद में मधु का उत्स होने के कारण ये सभी पद मधु से अन्वित हैं **–यस्यत्री पूर्णा मधुना पदानि**। विष्णु के तीन पद सूर्य के पथ के वाचक हैं।

यास्क ने विष्णु के तीन पदक्रमों की व्याख्या के लिए शाकपूणि का मत ग्रहण किया है कि पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में क्रमशः इनके पद हैं– **यदिदं किं च तद्विक्रमते विष्णु त्रिधा निधत्ते पदं त्रेधाभावाय, पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः (निरुक्त 12.19)।**

कतिपय विद्वानों की धारणा है कि विष्णु का यद्यपि किसी प्राकृतिक दृश्य से सम्बन्ध नहीं था तथापि मूलतः सूर्य की कल्पना ही विष्णु के रूप में विकसित हुई। सूर्य सत्वर चलने वाले ज्योतिष्पुंज हैं तो विष्णु भी अपने विस्तृत क्रमण से सम्पूर्ण जगत् का

परिक्रमण करते हैं। विष्णु ने तीन पद क्यों उठाये इसका वर्णन गौणरूप से कुछ ऋचाओं में प्राप्त होता है। पीड़ित मनु के विष्णु ने पार्थिव लोकों का तीन बार परिक्रमण किया, यथा –

यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद् विष्णुर्मनवे बाधिताय। (ऋग्वेद 6.49.13)

एक मन्त्र में सन्दर्भ प्राप्त होता है कि मनुष्यों का आवास स्थापनार्थ विष्णु ने पृथ्वी का परिक्रमण किया, इन्द्र के साथ **उरुक्रमण** करते हुए उन्होंने हमारे जीवन के लिए लोकों का विस्तार किया। विष्णु के इस स्वरूप में ही उनके वामनावतार के बीज निहित हैं। शतपथ ब्राह्मण इत्यादि ग्रन्थों में वामनरूप विष्णु की चर्चा है।

इन्द्र के साथ विष्णु की मित्रता का उल्लेख ऋग्वेद में अनेकत्र है। वृत्रवध के पूर्व इन्द्र विष्णु से कहते हैं कि हे मित्र! तुम लम्बे पैर रखो, यथा –

अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रे हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं विक्रमस्व।(ऋग्वेद 4.18.11)

दोनों देवताओं ने साथ-साथ वृत्र का वध किया, दास पर विजय प्राप्त की, शम्बर के 99 दुर्गों को तोड़ा और वर्चिन् के साथियों को धराशायी किया। विष्णु, इन्द्र के सहज मित्र हैं **(इन्द्रस्य युज्यः सखा)**। इस मित्रता के कारण पौराणिक युग में विष्णु को इन्द्र का अनुज **(उपेन्द्र)** कहा गया है। विष्णु का वाहन गरुड़ है, जो पक्षियों में प्रधान है और अग्नि के समान ज्योतिष्मान् है। उसे गरुत्मत् और सुपर्ण भी कहा गया है।

उपर्युक्त दोनों पदों का प्रयोग ऋग्वेद में खगरूप सूर्य के निमित्त किया गया है। यह विष्णु को सूर्य का रूप मानने के लिए महत्त्वपूर्ण संकेत है। कालान्तर में सूर्यनारायण की पूजा प्रचलित हुई। नारायण विष्णु के ही रूपान्तर हैं। समस्त जगत् में अपने पदक्रमों के कारण व्याप्त होने वाले विष्णु वैदिक युग में भी महत्त्वपूर्ण देवता थे।

13.3 सारांश

इस इकाई में आपने अध्ययन किया कि **अग्नि** के पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक भेद से त्रैविध्य हैं। अग्नि, विद्युत् तथा सौराग्नि। यह अग्रणी है। **इन्द्र** देवताओं का राजा, वृष्टिकारक तथा असुरों तथा राक्षसों का विनाशक है। यह वज्र धारण करता है तथा यह बहुत्र स्थलों पर स्तुत है। **सविता** द्युस्थानीय देवता है। यह सूर्य से अधिक साम्ययुक्त है। यह सभी का प्रेरक है। प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र के द्वारा सविता की ही स्तुति की जाती है। **वाक्** अन्तरिक्षस्थानीय देवी के रूप में परिगणित है। यह सभी देवताओं के साथ रहती है। **पुरुष** अनन्त शिर, नेत्र तथा पादों वाला है। यह विराट् पुरुष समस्त लोकों का सर्जक है। **मरुत्** से सम्बद्ध 33 सूक्त प्राप्त होते हैं। यह वायु एवं वृष्टि को उत्पन्न करने वाला है। यह अन्तरिक्ष का देवता है। **नासदीय** से तात्पर्य भाववृत्त देवता से है। यह प्रजापति के रूप में सृष्टि रचना के आधार हैं। **हिरण्यगर्भ** वस्तुतः क प्रजापति का बोधक है। यह सृष्टि की उत्पत्ति को प्रकट करता है। **विष्णु** तीनों लोकों को व्याप्त करने वाला है। यह त्रिपाद से सम्पूर्ण त्रिलोक को आवृत कर लेता है।

13.4 शब्दावली

अपर	–	दूसरा/अन्य
वियुक्त	–	पृथक्/अलग
विनिमय	–	बदले में
तत्तद्	–	उस-उस
प्रवहण	–	प्रवाह करना
प्रसरण	–	प्रसार करना
सर्जक	–	सृष्टि/उत्पन्न करने वाले
सत्वर	–	शीघ्रता के साथ

13.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वैदिक साहित्य और संस्कृत, पं. बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन, वाराणसी।
2. वैदिक देवशास्त्र, डा. सूर्यकान्त, मेहरचन्द लछमनदास, नई दिल्ली।
3. ऋग्वेद संहिता, सायण भाष्य, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नई दिल्ली।

13.6 अभ्यास प्रश्न

1. वैदिक साहित्य के सन्दर्भ में अग्नि के माहात्म्य को प्रतिष्ठित कीजिए।
2. अग्नि एवं इन्द्र के कर्मों की तुलना कीजिए।
3. इन्द्र के स्वरूप पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. सवितृ/सविता के मुख्य कर्मों पर प्रकाश डालिए।
5. सवितृ को वैदिक साहित्य में किस प्रकार की भूमिका में प्रतिष्ठित किया गया है? ससन्दर्भ वर्णन कीजिए।
6. वैदिक साहित्य के सन्दर्भ में वाक् के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
7. विष्णु के पराक्रम का वर्णन कीजिए।
8. प्रजापति के प्रमुख कार्यों का ससन्दर्भ उल्लेख कीजिए।